प्रायोगिक संस्करण

हिन्दी भाषा की समझ

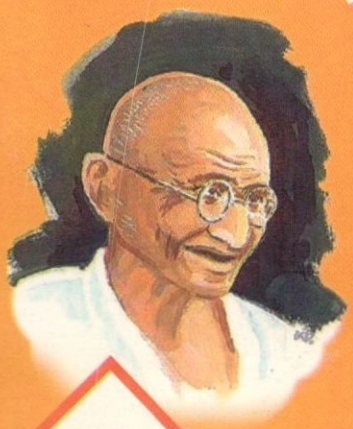

आस-पास के परिवेश से शिक्षण

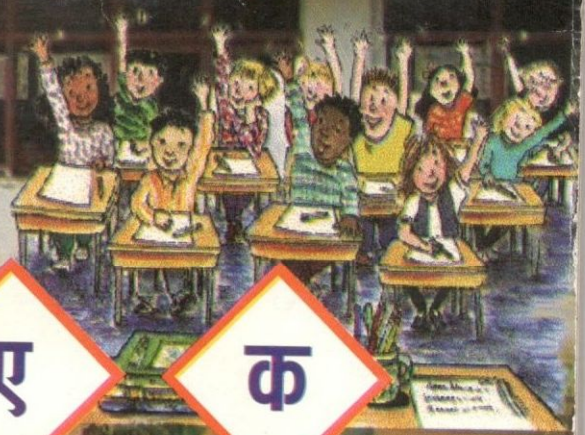

सत्र - 2010

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, शंकर नगर,
रायपुर (छ.ग.)

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका एवं उद्देश्य	1
2.	भाषा क्या है?	3
3.	भाषा की प्रकृति	5
4.	भाषा की समझ कैसे?	8
5.	भाषायी हीनता और विश्वास	11
6.	दैनिक जीवन की भाषा से भाषायी समृद्धि	14
7.	भाषा पर परिवेश का प्रभाव और भाषा शिक्षण	17
8.	भाषा और अन्य विषयों का अंतर्संबंध	19
9.	छत्तीसगढ़ में बहुभाषिता और भाषा अधिगम	21
10.	ज्ञान सृजन में भाषा की भूमिका	25
11.	पाठ पढ़ाएँ या भाषा सिखाएँ	28
12.	भाषा कौशल	30
13.	श्रवण कौशल और विकास की प्रक्रियाएँ	33
14.	भाषायी खेल	38
15.	भाषा का लिप्यंकन क्यों और कैसे?	48
16.	भाषा विषय–वस्तु या कौशल?	51
17.	भाषा शिक्षक को पत्र	54
18.	बालक की भाषायी क्षमता	56
19.	मेरा अनुभव	59
20.	मेरे छत्तीसगढ़ की हिन्दी	64

मार्गदर्शन

नंदकुमार

(भा.प्र.से.)

सचिव, स्कूल शिक्षा विभाग

छत्तीसगढ़ शासन

श्रीमती प्रतिमा अवस्थी

प्राचार्य एवं अपर संचालक

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

संपादन एवं समन्वयन

श्रीमती सीमा अग्रवाल

लेखन मण्डल

श्रीमती सीमा अग्रवाल

श्री बी.आर.साहू

डॉ.राजेन्द्र काले

श्रीमती सुधा वर्मा

श्री विनयशरण सिंह

श्री दिनेश गौतम

श्री वी.पी.चंद्रा

श्री संदीप शर्मा

श्रीमती तृप्ता कश्यप

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)

प्रेरणा स्त्रोत	श्री नंदकुमार (भा.प्र.से.) संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद शंकर नगर, रायपुर
स्त्रोत पुरूष	श्री पवन गुप्ता निर्देशक, सिद्ध संस्थान, मसूरी
मार्गदर्शन	श्रीमती प्रतिभा अवस्थी प्राचार्य/अपर संचालक शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, शंकर नगर, रायपुर
समन्वयन	श्रीमती सीमा अग्रवाल
लेखन समूह	श्रीमती सीमा अग्रवाल श्री बी. आर. साहू श्री राजेन्द्र काले श्री विनयशरण सिंह श्री बी.पी. चंद्रा श्रीमती सुधा वर्मा श्रीमती तृप्ता कश्यप श्री संदीप शर्मा
सहयोग	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रकोष्ठ एस. सी. ई. आर. टी., रायपुर (छ.ग.)

आमुख

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को एक सफल व्यक्ति के रूप में तैयार करना है जो आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो और न सिर्फ अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना कर सके, उनके समाधान खोज सके बल्कि मानव और प्रकशति के साथ तालमेल पूर्वक जीते हुए अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर सके। परिवार, समाज और राष्ट्र के सदस्य के रूप में अपनी भागीदारी का निर्वाह करते हुए समृद्धि और समाधान पूर्वक जीने की योग्यता से सम्पन्न व्यक्ति तैयार करना शिक्षा का कार्य है, इसीलिए कहा गया है – "शिक्षा जीवन की तैयारी है"।

वर्तमान में हमारी शिक्षा ऐसा नहीं कर पा रही है। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है, कि हम पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु को व्यावहारिक जीवन के संदर्भो से जोड़कर परोसने में असमर्थ रहे है।

सिद्ध संस्थान मसूरी द्वारा तैयार की गई "इतिहास की समझ" से इतिहास को नये संदर्भो में देखने की दृष्टि मिलती है। इसीलिए उनके सहयोग से इस पुस्तक को एस.सी.ई.आर.टी. द्वारा राज्य के शिक्षकों को उपलब्ध कराया गया ताकि इस विषय के प्रति उनकी समझ व सोच को एक नई दिशा मिल सके। इस पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए हाईस्कूल/हायरसेकेण्डरी स्कूलों में पढ़ाये जाने वाले प्रमुख विषयों में भी इस तरह की पुस्तक तैयार करने का सुझाव आया। अभी राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान हमारे सामने है और इसके अंतर्गत शिक्षकों का वशहत् पैमाने पर प्रशिक्षण किया जाना है, अतः इस तरह की पुस्तकें प्रशिक्षण के लिए बहुत अच्छी संदर्भिका भी साबित होंगी, इस दशष्टि से यह सुझाव बहुउपयोगी एवं सकारात्मक था।

यह निर्णय लिया गया कि राज्य में हाई तथा हायर सेकेण्डरी स्कूल में बहुसंख्य विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन किए जाने वाले 11 विषयों में इस तरह की पुस्तकें तैयार की जायें। अंग्रेजी, गणित, भौतिकी, रसायन, कामर्स व अर्थशास्त्र में इस तरह की पुस्तकें तैयार करने का दायित्व उन्नत अध्ययन शिक्षण संस्थान बिलासपुर को एवं हिन्दी, संस्कशत, जीव विज्ञान, भूगोल एवं राजनीति शास्त्र की जिम्मेदारी शासकीय शिक्षा महाविद्यालय रायपुर को दी गई। इन संस्थाओं ने प्रत्येक विषय के लिए विषय विशेषज्ञों की समितियाँ बनाई। इन समितियों द्वारा सभी विषयों का प्रथम प्रारूप तैयार किया गया। पहले ही प्रयास में कुछ विषय बहुत अच्छे बन पड़े थे तथापि हमें लगा कि इस पर अधिक गहन मंथन होना चाहिए। इसी सोच के तहत् तीन दिवसीय उन्मुखीकरण के लिए सिद्ध संस्थान मसूरी के निदेशक श्री पवन गुप्ता को एस.सी.ई.आर.टी. में आंमत्रित किया गया। इस विचार मंथन में समितियों के सदस्यों की समझ बनाने का बहुत अच्छा प्रयास हुआ। इस मार्गदर्शन से सभी में अधिक स्पष्टता आई कि विभिन्न विषयों की समझा संबंधी पुस्तकों को किस तरह का स्वरूप देना है।

प्राक्कथन

शिक्षा एक सोद्देश्य प्रकिया है, जिसमें सीखना समाहित है और सीखने में निरन्तरता होती है। कोई अनुभव से सीखता है, कोई अध्ययन से, कोई सृजन से। शिक्षक होने का अर्थ सतत् अध्ययनशील बने रहना। जो शिक्षक ज्ञान की साधना बंद कर देता है वह अन्ततः ज्ञान का द्रोही बन जाता है। शिक्षक की सर्वश्रेष्ठ मित्र है – पुस्तकें। शाला या महाविद्यालय तो हमारे सीखने के निश्चित केन्द्र होते है । शेष जीवन तो आत्मशिक्षण से ही चलता है। यह अनिवार्य सत्य है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अध्ययन से असाधारण बन जाता है।

सीखने से हमें बड़ा डर लगता है पर यह डर तभी तक रहता है, जब तक हम सीखना प्रारंभ नहीं कर देते। भ्रम की स्थिति तभी तक बनी रहती है, जब तक हम निर्णय लेने को कटिबद्ध नहीं हो जाते। ऊब या अरोमांच हमें तभी तक होता है, जब तक हम नित नवीन नहीं होते। ज्ञान का कोई अंत नहीं होता, ज्ञान की विनम्रता होती है। ज्ञान का कोई पद नहीं होता, ज्ञान का श्रेष्ठता होती है। ज्ञान पर किसी का आधिपत्य नहीं होता। वह सबके लिए है और सब उसके लिए।

आज शिक्षा के क्षेत्र में जो विषय की समझ की बात उठी है वह हमारे बदलते परिवेश की अत्यन्त महत्वपूर्ण और अनिवार्य माँग है। पढ़ाये जाने वाले विषय आज हमारे बच्चों के लिए केवल सूचना देने की व्यवस्था मात्र बनकर रह गये हैं। इसी कारण हमारी शिक्षा में हानि व अवरोध उत्पन्न हो रहे हैं। सीखना अपने आप में एक मूल्यवान गतिविधि है खासकर तब जब वह सहायक और प्रेरणादायक माहौल में हो।

आज हमें शिक्षा के नैसर्गिक संस्कार को समझते हुए उसे सहज बनाना होगा। उसकी दुरूहता को कम करते हुए उसे सहजता की ओर जाना होगा। पढ़ाये जाने वाले विषयों की पाठ्यवस्तु को व्यवहारिक जीवन के विभिन्न संदर्भो से जोड़कर बताना होगा क्योंकि शिक्षा दर्शन के रूप में चिन्तन मूलक है, तो कर्म के रूप में अभ्यास मूलक, उपलब्धि के रूप में परिष्कार, और संस्कार मूलक है। शिक्षा एक पक्षीय विचार न होकर एक बहुआयामी, बहुस्त्रोतीय धारा है। यह मानव और प्रकशति के समन्वय से पैदा होती है। इसलिए इसे मानव और प्रकृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

आज में ऐसे नागरिक तैयार करने की आवश्यकता है, जो यह समझते हो कि "स्व" एवं प्रकृति के विविध उपादानों के प्रति उनकी क्या जिम्मेदारियाँ है। उसके लिए उनमे उचित मूल्य और अभिवृत्तियों का विकास किया जाना जरूरी है। आज आवश्यकता इस बात की भी है कि हमारी पढ़ाये जाने वाली विभिन्न पाठ्यपुस्तकें वे

विषय बने जो बच्चों को सही सोचने व समझने वाला इंसान बनाए, उनके सर्वश्रेष्ठ को तलाशने में उनकी सहायता करें।

वर्तमान दशा में शिक्षा हमारे नैतिक स्तर को ऊपर उठाने में बहुत कम भूमिका निभा पा रही है। यदि शिक्षा को केवल आर्थिक विकास के साथ–साथ मानवता के नैतिक विकास में भी योगदान करना है, तो इसमें हमें स्कूली शिक्षा के दौरान पढ़ाये जाने वाले विषयों पर बहुत अधिक सजग रहना होगा। पाठ्यांश को व्यावहारिक जीवन के साथ जोड़ना होगा।

हमारी पाठ्य पुस्तकें नागरिक निर्माण की मजबूत कड़ी है। यह अधिक उपयोगी और सार्थक बने यह हम सब की सदेच्छा है। हम सब इसके लिए सदैव प्रयासरत है –

(श्रीमती प्रतिमा अवस्थी)
प्रायार्च एवं अपर संचालक
शासकीय शिक्षा महाविद्यालय
शंकर नगर रायपुर (छ.ग.)

भूमिका एवं उद्देश्य
(हिन्दी भाषा की समझ)

शिक्षण संदर्भ के साथ–साथ राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में भाषा शिक्षा का विशेष महत्व है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। भाषा के माध्यम से ही विद्यार्थी ज्ञान–विज्ञान के अनेकानेक विषयों का अध्ययन करता है और अपने व्यक्तित्व का समग्र निर्माण करता है। यदि भाषा पर हमारा अधिकार नहीं हो तो ज्ञान के क्षेत्र में हम अपेक्षित प्रगति नहीं कर सकते। भाषा मानव जीवन की बड़ी सहज और उच्चतर प्रक्रिया है। बच्चा अनायास ही खेल–खेल में भाषा सीखने लगता है और समय तथा परिस्थिति के अनुसार उसकी भाषा का विकास होता चला जाता हैं। भाषा किसी पर थोपी नहीं जा सकती। इसका विकास तो अंदर से स्वतः होता है। एक अध्यापक इस कार्य में यानी भाषा की समझ बढ़ाने और उसके विकास में बालक की सहायता कर सकता है। जब भी भाषा शिक्षण की बात छेड़ी जाती है जो पहली प्रतिक्रिया होती है–'भाषा क्या है?' वह तो बड़ी सरल बात है। कोई भी बालक भाषा की कक्षा में क्या पढ़ेगा? हालाँकि यह उपेक्षा भाव यूँ ही नहीं उपजा है यदि गहराई से इस पर विचार किया जाए तो बड़ी विसंगतियाँ नजर आएँगी। हम या तो भाषा की कक्षा का मतलब कहानी, नाटक और कविता व उनके प्रश्नोत्तर रटने की कक्षा से लगा बैठते हैं या फिर भारी–भरकम व्याकरण के सूत्र वाक्य और परिभाषा, उदाहरणों को रटने की कक्षा से। इससे बालक या तो उस कक्षा में उबासी लेता, मजबूरी में बैठा नजर आता है या फिर भाषा की कक्षा उसके लिए यातना की कक्षा बन जाती है। अमुक कविता की दस पंक्तियाँ याद नहीं है तो बेंत खाओ, अमुक के उदाहरण याद नहीं हैं, तो हथेलियों पर छड़ी के निशान यादगार बन जाते हैं। ऐसा क्यों? हम भाषा की कक्षा में पाठ्यपुस्तक को साध्य समझ बैठते हैं जबकि वह साधन मात्र होती है, ऐसे कई प्रकार के साधन हो सकते हैं जो हमारी भाषा की कक्षा में उपयोग किए जा सकते हैं। हम अपने परिवेश के माध्यम से भाषा–ज्ञान करा सकते हैं। इससे हमें कई प्रकार के लाभ भी होते हैं। हम प्रसंग के अनुरूप गणित, चित्रकला, संगीत, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों से भी जुड़ सकते हैं। बालकों को इन विषयों का शिक्षण स्वतः ही होने लगता है। अन्य विषयों की अवधारणाओं और सिद्धांतों की समझ पर पकड़ मजबूत होती जाती है। शिक्षक अपनी समझ और दक्षतानुसार यदि स्थानीय परिवेश को अपने शिक्षण के दौरान कक्षा में उपस्थित कर सकें तो इससे बालक और शिक्षक दोनों की रचनात्मक में निखार आ

सकता है। अब प्रश्न उठता है स्थानीय परिवेश यानि कौन–कौन सी बातें? तो इसका उत्तर यह है–जहाँ हम रहते हैं उस जगह के, उस गाँव के खेत–खलिहान, भूगोल, वहाँ के प्रमुख व्यक्ति, वहाँ का पहनावा, उगाया जाने वाला अन्न, प्रमुख तीज–त्यौहार, वस्त्र विभिन्न परम्पराएँ मान्यताएँ, मेले, वहाँ के पेड़–पौधे आदि।

जब भी हम कोई कार्य करते हैं तो कुछ उद्देश्य लेकर चलते हैं अन्यथा हमारी स्थिति सागर की लहरों पर थपेड़े खाती बिना नाविक की नाव के समान हो जाती है। इस मार्गदर्शिका में लेखन–समूह की ओर से कुछ–कुछ छोटे–छोटे किंतु पूर्ण तन्मयता और ईमानदारी से लेख दिए गए हैं जो हमारे शिक्षकों और बच्चों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेंगे। उन्हें निश्चय ही भाषा को नए ढ़ंग से सीखने की कुछ प्रेरणा मिलेगी। समझ बनाने में ऐसी हमारी शुभेच्छा है।

उद्देश्य–

1. स्थानीय परिवेश और उसके समाज, संस्कृति और परम्पराओं के माध्यम से भाषा का ज्ञान कराना।
2. बच्चों में सोचने, समझने, प्रश्न करने, तर्क करने की क्षमताओं का विकास करना
3. उनकी जिज्ञासा, जाँचने–परखने, विचार–विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना।
4. स्थानीय परिवेश और भाषा की कक्षा में दूरी को कम करना।
5. भाषा की कक्षा में उपेक्षा और यातना को दूर करना।
6. यह समझाना कि आस–पास की चीजें और कई छोटी–छोटी बातें और खेल भी हमारी भाषा की समझ को बढ़ा सकते हैं।
7. भाषा का अन्य विषयों से घनिष्ठ संबंध है, इस धारणा को पुष्ट करना।
8. बच्चों और शिक्षकों की रचनात्मकता और उनकी अभिव्यक्ति (लिखित और मौखिक) को प्रोत्साहित करना। (कई बार हमारे शिक्षक ही अपनी सही अभिव्यक्ति नहीं दे पाते हैं।)
9. बच्चों और शिक्षकों में नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान और उनके पालन करने का भाव का विकास करना।
10. भाषा की कक्षा को आनंददायी बनाना और जीवन से जोड़ना।

भाषा क्या है?

प्रिय शिक्षक साथियों! क्या आप अपनी जिंदगी का कोई भी एक दिन बिना भाषा का प्रयोग किए बिता सकते हैं? शायद नहीं। वास्तव में भाषा के बिना हमारा जीना दूभर है। भाषा पर जब गहराई से विचार करेंगे तो आपको यह पता चलता है कि जीवन की क्रियाएँ, भाषा से ही संचालित होती हैं। चाहे यह भाषा ध्वनि, मौन या संकेत की क्यों न हो। भाषा मनुष्य के जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखती है कि वह भाषा के माध्यम से अपना अस्तित्व तलाशता है।

भाषा की शुरुआत होती है सुनने की प्रक्रिया से। बच्चा पहली बार जब किसी भाषा को सुनता है तब उसके लिए वह ध्वनि मात्र होती है। इस 'आवाज' को बच्चा हजारों बार सुनता है और उसका एक 'अर्थ' लगाने की कोशिश करता है। धीरे–धीरे उसकी यही कोशिश किसी वास्तविकता व संदर्भ के साथ जुड़ती जाती है। उसके पश्चात् बालक उससे अर्थ निकालना सीख जाता है। अब जब भी उसे कोई ध्वनि सुनाई देती है वह उस ध्वनि का संबंध किसी अर्थ से जोड़ने की कोशिश करता है और वास्तविकता से जोड़ते हुए बच्चा ध्वनि और अर्थ के बीच तालमेल बिठाना सीख जाता है। इस प्रक्रिया में 'अनुकरण की प्रवृत्ति' कार्य करती है। परंतु केवल अनुकरण ही नहीं इससे हटकर भी भाषा को अपने संदर्भों से जोड़कर सीखता है।

आप अपने परिवेश की भाषा को ध्यान में रखकर किसी ऐसे बच्चे की कल्पना कीजिए जो अपने आप कुछ–कुछ बोलते रहता है। नए–नए शब्द और नए–नए अर्थ गढ़ना शुरु करता है। आप क्या सोचते हैं? क्या आप इसे भाषा कहेंगे? एक ऐसी भाषा जिसके बारे में समाज का कोई भी व्यक्ति नहीं जानता, केवल वही एक बच्चा अपने संदर्भों में जानता हो। शायद आप कहेंगे कि ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। बच्चों के द्वारा इस तरह का प्रयोग भाषायी दर्जे को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक समाज में इसे मान्यता न मिल जाए। चूँकि भाषा सार्वजनिक सम्पत्ति होती है इसलिए उसका सार्वजनीकरण होना आवश्यक है। सामाजिक व्यवस्था का निर्वाह करना भाषा के लिए आवश्यक है।

शिक्षक साथियो, भाषा सीखने के नवीन संदर्भों में हमें अपनी धारणा में बदलाव लाने की जरुरत है। भाषा सम्प्रेषण का एक माध्यम मात्र है। भाषा को सम्प्रेषण का एक माध्यम मात्र मानने से भाषा का प्रयोजन क्यों? क्या? जैसे प्रश्नों के उत्तर से वंचित हो

सकता है। वास्तव में हम भाषा के माध्यम से सोचते हैं, तर्क करते हैं, कल्पना करते है अभिव्यक्त करते हैं। किसी चीज का आभास, अनुमान भाषा के माध्यम से ही होता है इस संबंध को जानने और वस्तुओं से जुड़ने के साधन के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखत है। अन्य जीव–जंतुओं और मनुष्य के बीच जो अंतर है उसमें भाषा प्रमुख है। इसी भाष के माध्यम से मनुष्य सहज रूप में प्राप्त कल्पनाशीलता और कर्म की स्वतंत्रता को पुष करता है।

भाषा बच्चों के व्यक्तित्व को निखारने और उनकी क्षमताओं कों आकार देने भूमिका निभाती है। कक्षा में अपने विचारों को रखने वाले बच्चों के बारे में शिक्षक क यह टिप्पणी (तुम गलत बोल रहे हो, तुम्हें ठीक से बोलना नहीं आता) बहुत घातक होत है, इसके स्थान पर (हाँ! हाँ! थोड़ा और प्रयास करो, तुम सही बोल रहे हो) जैसे वाक्य बच्चों के व्यक्तित्व और क्षमता को निखारने में सहायक होते हैं। भाषा व्यक्ति क दृष्टिकोणों, उसकी शक्तियों, यहाँ तक कि मूल्यों और मनोवृत्तियों को भी आकार देत है। दुनिया को भाषा के माध्यम से ही समझा जा सकता है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भाषा एक औजार के रूप में कार्य करती है। अपनी इसी भूमिका के साथ भाष अनवरत रूप से चली आ रही है। अपनी इसी परम्परा में भाषा परिवर्तित भी होती है औ नवीन कलेवर में आती रहती है। अतः भाषा को समूचे जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखन आवश्यक है। अपनी क्रिया का संचालन, दूसरों के क्रियाकलापों को जानना, समझना एव समझाना, जीवन को प्रस्तुत करना, घटनाओं का विश्लेषण, तर्क करना ये सभी काय भाषा से ही संभव हो पाते हैं। अतः भाषा को उसके व्यापक स्वरूप में देखने की आवश्यकता है।

भाषा की प्रकृति

भाषा क्या है? उसका उत्तर हमारे पास यह है कि भाषा एक माध्यम है–चिंतन का और अभिव्यक्ति का। चिंतन के लिए जिस आंतरिक भाषा का उपयोग होता है उसके बारे में तो अभी तक कोई विशेष जानकारी किसी को भी नहीं हुई है, किंतु अभिव्यक्ति के लिए जिस बाह्य भाषा का प्रयोग होता है उसके बारे में हम कह सकते हैं कि वह संकेतों पर आधारित होती है। ये संकेत कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे–कायिक संकेत अर्थात् हाथ या सिर हिलाकर सहमति या असहमति देना। वाचिक संकेत अर्थात् बोलकर अपने को व्यक्त करना। अन्य कई प्रकार के संकेतों का भी हम अपने दैनिक जीवन में उपयोग करते और देखते रहते हैं–यातायात संकेत, स्वाद संकेत, स्पर्श संकेत। हम इनसे तरह–तरह के भावों को अभिव्यक्त करते हैं। संकेतों से अपने भावों या विचारों की अभिव्यक्ति से हिन्दी–भाषा का साहित्य भरा पड़ा है। सूर के कृष्ण इशारा करके माखन माँगते हैं –

कमल नैन माखन माँगत
करि–करि सैन बतावत (सूरसागर)

इसी तरह अनेक उदाहरण हम यहाँ दे सकते हैं। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन के संकेत बहुत ही सशक्त भाषा का काम करते हैं। जब कक्षा शिक्षण की बात आती है तो हिन्दी भाषा का शिक्षक यदि चाहे तो बड़ी सरलता और कुशलता से इस संकेतात्मक भाषा का प्रयोग कर बालक और अपने मध्य की खाई को कम कर उसकी विषयगत समझ को बढ़ा सकता है।

सच पूछा जाए तो भाषा समझौते की एक व्यवस्था है। आँखों के माध्यम से बात कहने के तो अनेक उदाहरण दे सकते हैं जैसे–एक बालक अपने मित्र से कहता है "तुम कल मुझे मेरे घर बुलाने आना, हम पिकनिक पर चलेंगे पर एक बात का ध्यान रखना यदि उस समय पिताजी घर पर हों तो तुम वापस चले जाना और माँ हो तो तुम मुझे बुला लेना।" यह भी एक संकेत माध्यम है किंतु जब हम बोलकर अपनी बात कहते हैं और सुनकर समझते हैं तो यही माध्यम हमें सबसे सुविधाजनक लगता है, अतः इसी का प्रयोग सर्वाधिक होता है। सामान्यतः जो बोलने और सुनने पर आधारित है उसी को हम 'भाषा' कहते हैं। भाषा पशु–पक्षियों की भी होती है। भाषा मधुमक्खियों की भी होती है। भाषा पेड़–पौधों की भी होती है, परंतु यहाँ हम बात कर रहे हैं मानव द्वारा प्रयुक्त उस

भाषा की जो विचार विनिमय का साधन होती है, जिसमें निश्चित प्रयत्न के फलस्वरुप मनुष्य के उच्चारण अवयवों से निःसृत ध्वनि–समष्टि होती है। इसी तरह भाषा में प्रयुक्त ध्वनि समष्टियाँ (या शब्द) सार्थक तो होती हैं, किंतु उनका भावों या विचारों से कोई सहजात संबंध नहीं होता। यह संबंध 'माना हुआ' होता है। यह बात कहीं न कहीं सत्य प्रतीत होती है। अन्यथा यह संबंध तर्कपूर्ण, नियमित या स्वाभाविक होता तो सभी भाषाओं में शब्दों का साम्य मिलता। अंग्रेजी भाषा में व्, आ, ट्, अ, र (वाटर) के योग को पानी समझा जाता तो इसका हिन्दी पर्याय भी लगभग यही होता। वह प्, आ, न् ई (पानी) का योग नहीं होता। इसी कारण एक ही भाव, विचार या एक ही वस्तु के लिए विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग शब्द मिलते हैं। पर यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि ध्वन्यात्मक शब्दों में अर्थ का कुछ न कुछ संबंध ध्वनि से अवश्य होता है परंतु यह पूर्णरुपेण नहीं होता है। जैसे– कुत्ते सारे संसार में एक से भौंकते हैं। परंतु उनकी ध्वनि के लिए प्रयुक्त शब्द विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग हैं।

उदाहरणार्थ– हिन्दी में भों–भों या भौं–भौं , अंग्रेजी में bow-bow फ्रांसीसी में gnaf-gnaf जापानी में wan-wan की व्यवस्था है। इसका मतलब यह है कि थोड़े बहुत अनुकरण का सहारा लेते हुए भी बिना किसी खास नियम के ये शब्द बना या मान लिए गए हैं। यही बात कमोबेश सभी प्रकार के शब्दों के बारे में है। हिन्दी का 'भाषा' शब्द अंग्रेजी में 'लैंग्विज' फारसी में 'जबान' और रुसी में 'याजिक' न होता। पर यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि यादृच्छिकता की अपनी सीमा होती है।

इस प्रसंग में एक और बात भी ध्यान देने की है। भाषा में प्रतीक वस्तु का नहीं होता उसकी मानसिक संकल्पना का होता है। जैसे प्रतीक शब्द है फूल।

यदि गहराई से देखें तो भाषा व्यवस्थाओं की व्यवस्था है। ध्वनि, शब्द–रचना रुप–रचना, वाक्य–रचना सभी स्तरों पर इसमें व्यवस्था होती है। भाषा की व्यवस्था के अपने नियम होते हैं जिसके द्वारा उस भाषा के सभी बोलने वाले सहज परिचित होते हैं इसमें वही सुना जाता है जो कहा जाता है। भूतकाल का वाक्य भूतकाल का ही समझा जाता है। भविष्य काल का नहीं। भाषा की आंतरिक और बाह्य व्यवस्था के अंतर्गत उसकी बाह्य व्यवस्था भाषा को समाज में बोधगम्य बनाती है।

भाषा में यादृच्छिकता के साथ सृजनात्मकता भी होती है। भाषा में शब्द और रूप तो प्रायः सीमित होते हैं किंतु हम अपनी आवश्यकतानुसार यादृश्य के आधार पर नित नए–नए असीमित वाक्यों का सृजन करते रहते हैं। मजे की बात तो यह है कि श्रोत

को उन्हें समझने में भी कठिनाई नहीं होती। जैसे–मैं, वह, तुम, बुलवाना इन चार शब्दों से ही बहुत सारे वाक्यों का सृजन कर सकते हैं। (1) मैंने उसे तुमसे बुलवाया (2) उसने तुम्हें मुझसे बुलवाया आदि। इसी तरह बालक की भाषिक क्षमता अनुकरणशील भी होती है। इसी से वह विकसित भी होती जाती है। मानव भाषा अन्य जीव–जंतुओं की भाँति अपरिवर्तनशील नहीं रहती। बिल्लियाँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक ही तरह की भाषा का प्रयोग करती आ रही हैं। किंतु मानव भाषा में संस्कृत काल का 'कर्म' प्राकृत काल में 'कम्म' हुआ तो आधुनिक काल में काम।

भाषा का काम है अर्थ की अभिव्यक्ति जिसके लिए वह तीन तरह की इकाइयों का प्रयोग करती हैं–

(1) **शब्द**– जिसमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया आदि आते हैं।

(2) **मुहावरे**– ऐसे वाक्यांश जो सामान्य दृष्टि से कुछ और अर्थ रखते हैं तथा वास्तविक प्रयोग में कुछ और अर्थ होता है। जैसे–नौ दो ग्यारह हो जाना, बारह बाट होना आदि।

(3) **लोकोक्ति**–ये या तो शब्दार्थ स्तर पर सार्थक होती हैं जैसे– "रुपया–रुपया कमाता है", "कर भला तो हो भला". या फिर व्यंजना स्तर पर जैसे– "नौ दिन चले अढ़ाई कोस", "सावन के अंधे को हरा ही हरा सूझता है"।

भाषा की समझ कैसे?
(बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं)

शिक्षक साथियों, भाषा की प्रकृति पर चर्चा करने के बाद इस पर भी चर्चा करन आवश्यक है कि बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं। आपने देखा होगा कि दुनिया का हर बच्च अपने आस–पास की भाषा सीख ही लेता है। स्कूल नहीं जाने वाला बच्चा भले ही लिख नहीं पाता लेकिन वह बोल जरुर लेता है। ताज्जुब की बात यह है कि कोई भ माता–पिता अपने बच्चों की 'भाषा क्लास' नहीं लेता। इसके बावजूद भी बच्चे भाष सीख ही लेते हैं। इसके विपरीत हम क्लास लेकर भी बच्चों को भाषायी रूप से समृद्ध नहीं बना पा रहे हैं। इस पर चिंतन करने की जरुरत है। हमारी शिक्षा व्यवस्था मे सिखाने के ढंग में कुछ तो कमी है जिसे दूर करने की जरुरत है। हम इस विषय पर आगे बातचीत करेंगे।

आइए, अब जानें कि बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं? शैशव अवस्था में बच्चे क साक्षात्कार विविध ध्वनियों से होता है। शुरु में बच्चे के लिए भाषायी ध्वनि या अन्य कोइ भौतिक ध्वनि में कोई फर्क नहीं होता। धीरे–धीरे आगे चलकर बच्चा भाषायी ध्वनि क पहचानना शुरु करता है उस पर ध्यान केन्द्रित करता है। आप अपने बच्चे के बचपन क याद कर सोचिए कि आपने बच्चे को पानी पिलाते समय कितनी बार, 'मम्मम, मम्मा, पानी जैसी ध्वनियों का उच्चारण किया होगा। बच्चे ने इन ध्वनियों को कई बार सुना होगा सुनने के साथ–साथ आपके हाव–भाव, मुखमुद्रा और आपके क्रियाकलाप को देखा होग तब कहीं मम्मम, मम्मा पानी जैसी ध्वनियों के साथ पानी का संबंध स्थापित किया होगा इस घटना की कई बार पुनरावृत्ति होने पर बच्चा मम्मम, मम्मा पानी ध्वनियों को 'पानी के साथ जोड़कर देखता है। इस तरह की घटना बालक के जीवन में कई बार घटित होती है। बच्चों के साथ बातचीत करने में हम संकेतों, इशारों या वस्तुओं के प्रदर्शन पर भी ध्यान देते हैं जिससे बच्चे को भाषा सीखने में सहायता मिलती है। किसी ध्वनि क उच्चारण के साथ किसी वस्तु की ओर इशारा करना, किसी वस्तु को दिखाना भाष सिखाने में सहायक होता हैं।

उपरोक्त घटनाएँ बालक के आस–पास घटित होती हैं लेकिन सबसे बड़ी घटन घटित होती है बालक के मस्तिष्क में। किसी ध्वनि को जब बच्चा सुनता है और उस ध्वनि के उच्चारण के समय की परिस्थिति को 'याद' करने की कोशिश उसके मस्तिष्क

में किसी कम्प्यूटर की तरह होती है। प्रत्येक बालक में भाषा सीखने की नैसर्गिक ताकत, (क्षमता) होती है। इसी कारण बालक सहज रूप से अर्थ निकालना सीख जाता है।

बच्चे भाषा सीखने की शुरुआत रोने के साथ करते हैं। शुरु में बच्चे सिर्फ रोते हैं। ये सभी बच्चों के साथ होता है। इसके बाद बच्चे लगभग 6 सप्ताह में गूँ–गूँ करना शुरु कर देते हैं। छः माह के बाद बच्चे माँ, मम्मा जैसी आवाजें निकालने की कोशिश करते हैं। छत्तीसगढ़ के बच्चे अपने परिवेश के अनुसार अलग–अलग तरह की आवाज निकालने की कोशिश करते हैं। बच्चों की आवाज सुनकर माता–पिता कई बार यह मान लेते हैं कि उनके बच्चे उन्हें पुकार रहे हैं। हालाँकि अपने होठों के साथ प्रयोग करते हुए यही आवाजें निकालना बच्चे के लिए सबसे आसान होता है। 8 माह के आस–पास बच्चे ऐसी आवाजें निकालना शुरु कर देते हैं जैसे वे बातें कर रहे हैं जबकि वे सिर्फ सुनी हुई भाषा की लय की नकल करते हैं। एक वर्ष तक बच्चे एक–दो शब्द बोलना शुरु करते हैं। वे वही शब्द बोलते हैं जिन ध्वनियों से उनका ज्यादा साक्षात्कार हुआ होता है। शब्द बोलते समय बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ते जाता है। भाषा सीखने की सहज क्षमता इस कार्य में सहयोग प्रदान करती है। 15 से 18 माह की उम्र में पहुँचते–पहुँचते बच्चे अपने आस–पास की हर चीज को नाम देना शुरु कर देते हैं। 3 साल की उम्र तक बच्चों के पास लगभग 3000 शब्दों का भंडार होता है। बच्चे बचपन में भाषा का उपयोग तीन तरह से करते हैं–पहला दैनिक जीवन में भागीदारी, दूसरा जीवन के दर्शक के रूप में और तीसरा जीवन के अनुभवों से उत्पन्न भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए। स्कूल में भाषा–शिक्षण की दृष्टि से दूसरा और तीसरा कार्य महत्वपूर्ण है। विविध गतिविधियों के माध्यम से इन बातों को समृद्ध किया जा सकता है। वर्तमान में हमारी शिक्षा व्यवस्था में भाषा की शिक्षा को एक स्कूली विषय के रुप में देखा जाता है, बच्चे के समग्र विकास के संदर्भ में नहीं। इस धारणा के कारण दैनिक जीवन और वातावरण में भाषा की भूमिका के महत्व का अनुभव नहीं किया जा सकता।

शिक्षक साथियों, अब आपने यह ठान लिया है कि बच्चे की भाषा को समृद्ध करने की जरुरत है। इस कार्य की शुरुआत की जा सकती है बच्चों की भाषा को सुनने और समझने से। बच्चे की भाषा का जितना आदर विद्यालय में किया जाएगा उतनी ही बच्चे की भाषा समृद्ध होती जाएगी। नए–नए शब्द, वाक्य सीखने के लिए बच्चों के साथ अधिक बातचीत करना, उन्हें अधिक–से–अधिक अवसर प्रदान करने की जरुरत है।

बच्चों की भाषा सीखने का संबंध उन अनुभवों से है जिन्हें वे अपने हाथों अ
शरीर से स्वयं करते हैं। भाषा सीखने का संबंध उन वस्तुओं से भी है जिनके सम्पर्क
वे आते हैं। बचपन में शब्द और क्रियाकलाप साथ–साथ चलते हैं। क्रियाकलाप अ
अनुभव को आत्मसात करने और व्यक्त करने के लिए शब्दों की जरुरत होती है। ब
का कोई अनुभव जब पूरा हो जाता है उसके बाद भी वह शब्दों के जरिए उपलब्ध रह
है। इस तरह से यह प्रक्रिया चलती रहती है। नए–नए संदर्भ (परिवेश, घटना, साम
अवलोकन) में अनुभव के साथ नए–नए शब्दों को समझना फिर शब्दों को बच्चों में व्य
करना यह भाषायी नैसर्गिक क्षमता से संभव हो पाता है।

बच्चों को भाषा सिखाने के लिए जरुरी है कि पहले शिक्षक उनकी भाषा
सम्मान करें। बच्चा अपने परिवेश की अनौपचारिक परिस्थितियों में जो भाषा सीख
आता है उसका आदर करने से बच्चे में आत्मविश्वास जागृत होता है। इसी आत्मविश्व
के आधार पर बच्चा अपनी भाषा को समृद्ध करते हुए दूसरी भाषा सीख लेता है।

बच्चों से उनके अनुभवों पर बातचीत चर्चा–परिचर्चा, अनुभव लेखन आदि
अवसर देकर भी भाषा को समृद्ध किया जा सकता है। विविध संदर्भों में भाषा के प्रय
कर नाटक, प्रहसन, संवाद जैसे कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जा सकता है।
शिक्षक को यह समझने की जरुरत है कि अनौपचारिक तरीकों से भी भाषा की शि
दी जा सकती है। भाषा सीखने की सहज नैसर्गिक क्षमता होने के कारण बच्चे
अनुकरण की प्रवृत्ति होती है, जरुरत है समझने, सहेजने व उन्हें आकार देने की।

उत्साहवर्धक सोच किसी भी भाषा को सीखने में मदद करती है।

भाषायी हीनता और विश्वास

भाषा व्यवहार में सीखी जाती है। जन्म से ही बालक अपने आसपास के वातावरण से भाषा सीखना प्रारंभ कर देता है। जैसा कि सर्वविदित है कि सीखना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, भाषा को भी व्यक्ति आजीवन सीखता रहता है। किसी पुस्तक को पढ़कर, या किसी भाषा के व्याकरण को पढ़कर उस भाषा को तब तक नहीं सीखा जा सकता, जब–तक उस भाषा को व्यवहार में न लाएँ। अपनी मातृभाषा को ही लें। बालक जब स्कूल में आता है तो उसने किसी भी पुस्तक या व्याकरण को नहीं पढ़ा होता है, किन्तु वह भाषा के प्रयोग को भली–भाँति जानता है। अपने विचारों को अच्छी तरह व्यक्त कर लेता है तथा वार्तालाप के दौरान दूसरों की बातों को सुनकर उचित प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। उस बालक ने भाषा कहाँ से सीखी? सीधी सी बात है कि भाषा उसके व्यवहार में शामिल है। बालक जन्म के बाद से ही अपने आसपास के वातावरण जिसमें उसका अपना परिवार, आसपास के लोग तथा वह प्रत्येक व्यक्ति शामिल है जिससे वह मिलता है या जो उस बालक से मिलकर उसके साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार करता है। इन व्यवहारों के दौरान प्रयुक्त प्रत्येक भाषायी ध्वनि को बालक उन ध्वनियों के अर्थ के साथ जोड़ता चला जाता है और ये ध्वनियाँ उसके मानस पटल पर अंकित होते जाती हैं। आवश्यकतानुसार उन ध्वनियों का प्रयोग बालक धीरे–धीरे अपने स्वयं के प्रयास से करने लगता है। ध्वनियों के उच्चारण को सीखने में प्रारंभ में उसे काफी कठिनाई होती होगी, क्योंकि इसके पहले उसने कभी उन ध्वनियों को अपने मुख से उच्चारित नहीं किया होता है। प्रारंभ में उसने सिर्फ उ ऽ ऽ आँ ऽ ऽ, उ ऽ ऽ आँ ऽ ऽ, की आवाज से रोना सीखा होता है फिर बाद में हा हा ऽ ही ही ऽ आदि ध्वनियों के प्रयोग से हँसना सीखता है। विशेषकर हिंदी भाषी बालक सबसे पहले म...म ...माँ ..... प .....प..... पा ऽ पा ऽ ऽ, बा ऽ बा ऽ आदि ध्वनियों को सीखता है क्योंकि इन ध्वनियों को बालक के माता–पिता बार–बार उसके सामने उच्चारित कर उसे प्रेरित करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य भाषा–भाषी प्रारंभिक शब्दों का उच्चारण बालक के सामने बार–बार करते हैं, उन्हें सुनकर उसका अनुकरण करते हुए बालक ध्वनियों का उच्चारण करना सीखता है और फिर धीरे–धीरे अन्य शब्दों को उच्चारित करने लगता है। विभिन्न अर्थों के साथ विभिन्न भाषायी ध्वनियों की ग्राह्यता बढ़ती जाती है, इस प्रकार बालक का शब्दकोश बढ़ने लगता है। एक–एक शब्द को जोड़कर पहले वह छोटे

वाक्य या अपूर्ण वाक्य बोलना सीखता है फिर धीरे–धीरे लम्बे और कठिन वाक्यों का भी प्रयोग करने लगता है। ये सारी क्रियाएँ सीधे व्यवहार में परिलक्षित होती हैं।

पाँच वर्ष की अवस्था तक बालक, भाषा को इतना आत्मसात कर चुका होता है कि वह अपनी सीखी हुई भाषा में अपनी आवश्यकता से संबंधित सभी बातों की अभिव्यक्ति कर लेता है तथा दूसरों के द्वारा बोले गए में से अपने काम की सारी बातें समझ भी जाता है।

समस्या तब आती है, जब उस बालक के सामने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है, जिसे उसने पहले कभी सुना नहीं और न ही कभी व्यवहार में उसका प्रयोग ही किया है। जैसे हिंदी भाषी बालक के सामने यदि कोई अंग्रेजी में बातें करता है, तो उसे बड़ा अजीब–सा महसूस होने लगता है। वह यह सोचता है कि इस आदमी को क्या हो गया है ? यह ठीक से बोलता क्यों नहीं? इसका बोला हुआ मुझे समझ में क्यों नहीं आ रहा है। सबसे बड़ी समस्या तो तब खड़ी हो जाती है, जब उस अनजान–सी भाषा बोलने वाले को उपस्थित अन्य सभी लोग विशेष मान–सम्मान दे रहे होते हैं और उस बालक के प्रति सबका व्यवहार उदासीन सा रहता है या न समझ पाने के कारण उसे हेय दृष्टि का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बालक के मन में कुण्ठा घर कर जाती है कि मैं इसकी बात समझ नहीं पा रहा हूँ, जबकि इस घटना में उस बालक का कोई दोष नहीं होता है। अन्य भाषा बोलने वाले व्यक्ति को बालक पराया समझने लगता है। ऐसे समय पर जब उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता है, जो उसके साथ उसकी अपनी भाषा में बातें करता है तो उस व्यक्ति में उसे अपनापन मिलता है और वह बड़ा प्रसन्न होता है। उसका भय कम होता जरूर है किन्तु पराई भाषा बोलने वाले की तुलना में वह अपने आप को तुच्छ समझ कर अंदर ही अंदर भयभीत सा रहता है। यही भय कालांतर में उसके लिए हौव्वा बन जाता है, जो सीखने की प्रक्रिया में भी बाधक बन जाता है।

नई भाषा सिखाने की प्रक्रिया वैसी नहीं रहती, जैसी बालक को उसकी अपनी मातृभाषा सिखाने की थी। मातृभाषा सीखने के दौरान वह कितनी ही गलतियाँ करता है, उल्टे–सीधे उच्चारण कर कुछ भी बोलता है किन्तु उस दौरान उसे डाँटा नहीं जाता वरन् इस बात का कौतुक किया जाता है कि वह कुछ बोला तो सही। मातृभाषा सीखने के दौरान पूरे समय उसे केवल और केवल प्यार ही मिला होता है इसलिए वह मातृभाषा को आसानी से सीख लेता है। कहीं भी स्लेट–पेंसिल या कागज–कलम की गुंजाइश

नहीं रहती। किन्तु स्कूल में आने के बाद बच्चों को अंग्रेजी या संस्कृत जैसी नई भाषा को उसे व्यवहार में नहीं बल्कि बोझ स्वरूप लिखकर सिखाया जाता है। जिस बच्चे ने उस नई भाषा की ध्वनियों को नहीं सीखा, उसके अर्थों को आत्मसात नहीं किया उसे सीधे उस भाषा की लिपि सिखाई जाती है और वह भी डाँट–फटकार या अपमानित किए जाने जैसे माहौल में, यह कैसी विडम्बना है। जब तक इस प्रक्रिया में सुधार नहीं लाया जाएगा, तब तक नई भाषा सीखने की बात तो दूर बच्चों को अन्य भाषा के प्रति लगाव भी उत्पन्न नहीं होने वाला।

एक उदाहरण देखते हैं, एक ऐसा परिवार है, जिसमें दादा–दादी सिर्फ मराठी बोलते हैं, माँ और पिताजी सिर्फ अंग्रेजी में बातें करते हैं, अड़ोस–पड़ोस के बच्चे हिंदी में बातें करते हैं और घर में काम करने वाली बाई छत्तीसगढ़ी में ही बातें करती है, तो उस घर में पैदा हुआ बच्चा इन चारों भाषाओं को एक साथ सीखता है और उतनी ही सुघड़ता के साथ सीखता है जितना कोई बालक किसी एक भाषा वाले वातावरण में मात्र अपनी मातृभाषा को सीखता है। बच्चा जब भी अपने दादा–दादी से बातें करता है तो मराठी का प्रयोग करता है, माँ–पिताजी से अंग्रेजी में और पड़ोसी बच्चों से हिंदी में बातें करता है। सबसे बड़ी बात यह कि पड़ोसी बच्चों के साथ उसका जो भी व्यवहार होता है उसका वर्णन अपने पिता से अंग्रेजी में व दादी से मराठी में तथा काम वाली बाई से छत्तीसगढ़ी में बखूबी कर लेता है। इस बच्चे को किसी ने ट्रान्सलेशन के नियम और व्याकरण नहीं सिखाए किन्तु फिर भी वह एक अच्छा अनुवादक साबित होता है। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा सिर्फ इसलिए हुआ क्योंकि उस बालक ने भाषा को सिर्फ सीखा नहीं बल्कि उसने उन सभी भाषाओं को जिया। अपने व्यवहार में उसे अपनाया। अपने जीवन में उन भाषाओं की ध्वनियों को उनके अर्थों के साथ ग्रहण किया तथा अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए उसका प्रयोग भी किया। अब बाद में उसे भले ही व्याकरण पढ़ाते रहिए। लेकिन उससे पहले ही उसने उन सभी भाषाओं की संरचना एवं प्रकृति को समझ लिया हुआ है। इस बच्चे के सामने यदि कोई अंग्रेजी में बातें करेगा तो उसे कुछ भी नया नहीं लगेगा, वह सामने वाले की बात को समझ भी लेगा और प्रतिक्रिया स्वरूप सही–सही जवाब भी देगा। ऐसी स्थिति में उस बालक को किसी प्रकार का भय या आतंक का सामना नहीं करना पड़ेगा।

भाषा सीखने का सही तरीका यही है। इससे भाषायी हीनता कभी नहीं आएगी वरन् भाषा के प्रति और उसके प्रयोग के प्रति बालक के मन में पक्का विश्वास जागृत हो जाएगा, जो स्थायी और चिरंतन होगा।

दैनिक जीवन की भाषा से भाषायी समृद्धि

बालक जब बढ़ने लगता है तब वह बोलना भी सीखने लगता है। भाषा का उचित ढंग से प्रयोग उसे आरंभ से ही सिखाना उचित होता है। कई मायनों में वह उचित भाषा का प्रयोग करता भी है। अपनी मातृभाषा पर पकड़ मजबूत होने के साथ–साथ व्यावहारिक रुप से बोली जाने वाली भाषा यथा हिन्दी या कोई अन्य भाषा का ज्ञान एवं उसकी समझ हमें आगे बढ़ाती है। भाषा का अध्ययन, वाक्य रचना का अभ्यास और भावाभिव्यक्ति की योग्यता द्वारा ही मानसिक संस्कार की ओर पग बढ़ाया जा सकता है। हमारी यह अपेक्षा कि प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा में ही बालक को मातृभाषा का पर्याप्त ज्ञान हो जाना चाहिए व्यर्थ नहीं है। आज हमारे देश में कितने ही वयस्क हैं जो शुद्ध तथा वाग्धारा पूर्ण भाषा में किसी विषय पर निबंध लिख सकें? अनगिनत लोग ऐसे हैं जो एक साधारण–सा पत्र भी सही ढंग से नहीं लिख पाते। आज बातचीत में जो त्रुटियाँ सुनाई देती हैं इसका कारण यही है कि भाषा के अध्ययन के प्रति हमारा रवैया उपेक्षापूर्ण है। वार्तालाप एक कला है ओर बोली एक माध्यम है। मेरा कहना यह है कि हम खान–पान या पहनावे में सब कुछ अच्छा चाहते हैं तो बोलचाल में, भाषा के प्रयोग में हम 'कुछ भी' क्यों चला लेते हैं? यहाँ हम शास्त्रीय या मानक भाषा वाली बात नहीं कह रहे हैं किंतु हमारी भाषा ऐसी तो हो कि अर्थ एवं भाव की पहुँच दूसरों तक सही ढंग से हो सके।

हमें अपनी मातृभाषा से प्रेम होना चाहिए। हमारी शिक्षा का आरंभ हम मातृभाषा से ही होना चाहिए किंतु भाषा की शिक्षा यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। न भाषा की शिक्षा केवल भाषा की ही शिक्षा है बल्कि वह अन्य विषयों से भी जुड़ी हुई है। भाषा की शिक्षा गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सभी विषयों की शिक्षा से भी होती है। एक साधारण बालक का मस्तिष्क विचलित हो उठता है जब भाषा संबंधी नियमों, अपवादों आदि का सामना करना पड़ता है अतः सहजता से उसे अपनी परिचित भाषा से उसकी शिक्षा की शुरुआत हो तो फिर क्या कहने!

अब यदि हम हिन्दी भाषा के कक्षा शिक्षण की बात करते हैं तो निम्न मुद्दों की बात करते हुए अपना पक्ष रख सकते हैं –

जब हम भाषा की कक्षा में होते हैं तब हम अपने साथ पूरे देश और प्रदेश की सारी विशेषताओं को लेकर खड़े रहते हैं। भाषा का अपना समाज, अपना भूगोल

है। उसका वहाँ के त्यौहारों खान–पान, रीति–रिवाज, कपड़े–लत्ते, पेड़–पौधों, वाहनों, कक्षाओं, पशु–पक्षियों, खेलकूद आदि सभी से घनिष्ठ संबंध होता है।

यदि वनस्पतियों की बातें करें तो हम देखते हैं 'कमल' का हमारी भारतीय संस्कृति से अटूट संबंध है। चित्रों में देखते हैं कि लक्ष्मी को प्रायः कमल पर बैठा दिखाया जाता है। इसीलिए उसे कमलासना, पद्मासना या पद्मा कहा जाता है। भाषा की कक्षा में हम पेड़–पौधे, तने, डंठल, जड़, पत्ती, अंकुर, फल, फूल जैसे शब्दों का बड़ी आसानी से इस्तेमाल करते हैं जो कि वनस्पतियों के आधार पर ही प्रचलित हुए हैं। इनमें से कई शब्दों का तो हम हिन्दी भाषा में आलंकारिक रुप में व्यापक प्रयोग भी करते हैं जैसे–झगड़े की जड़ कौन है? जैसा करोगे वैसा फल पाओगे, खूब फलो–फूलो आदि। इसी तरह अनेक नए–नए शब्द भी इनके आधार पर बने हैं। 'पत्ती' को संस्कृत में 'पत्र' कहते हैं जिससे पत्तर (सोने–चाँदी का) पत्तल (पत्तों का) पतला (पत्ते के जैसा) आदि निकले हैं। जिस प्रदेश में जो पेड़–पौधे होते हैं, प्रायः वहाँ की भाषा में उनके लिए शब्द भी अवश्य होते हैं। वनस्पति का हमारे रोज के जीवन से भी घनिष्ठ संबंध होता है। ये हमारी भाषिक अभिव्यक्ति को रंग–बिरंगा कर देती है। अंगूर का खट्टा होना, आसमान से गिरे खजूर में अटके, गुलाबी गाल, कोदो दलना (छाती पर), कटहल होना (भीतर से मुलायम, बाहर से कड़ा) जड़ हिलगे, नमक मिर्चा लगाए (छत्तीसगढ़ के संदर्भ में), थारी में बैंगन, झरबेरी के काँटा आदि। इसी तरह पशु–पक्षियों के नामों का प्रतीकात्मक प्रयोग भी भाषा में मिल जाता है जैसे–हमारी हिन्दी भाषा में शेर (चालाक), कछुआ (धीमी चाल चलने वाला), गधा, उल्लू (मूर्ख) आदि शब्दों का मूल अर्थ के अतिरिक्त भी संकेत अर्थ में प्रयोग मिलता है। यदि शब्द–बंध की दृष्टि से देखें तो सिंहावलोकन, गिद्धदृष्टि से, हाथी चाल, काठ का उल्लू, किताबी कीड़ा जैसे अनेकानेक उदाहरण मिल जाते हैं। मुहावरे–चोंच खोलना, अपना उल्लू सीधा करना, ऊँट के मुँह में जीरा, जैसे जाने कितने मुहावरों से हमारी हिन्दी भाषा समृद्ध है। लोकोक्तियों में भी इनकी भरमार होती है–देखें ऊँट किस करवट बैठता है, एक मछली पूरे तालाब को गंदा करती है, 'बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद' आदि कहने का तात्पर्य यह है कि आस–पास के परिवेश और पशु–पक्षियों से भी भाषा का ज्ञान बढ़ाया जा सकता है।

अब यदि खेलकूद की बात करें तो ये हमारे जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। भाषा की कक्षा में यदि खेलकूद की बातें कर बच्चों को नए शब्द, नए मुहावरों से परिचय करा दिया जाता है तो उनकी भाषायी समझ अधिक बनती है। खेल संबंधी कुछ मुहावरे

देखिए–पंजा लड़ाना, दाँव लगाना, धूल चटाना, टँगड़ी मारकर गिराना, चारों खाने चित्त होना, क्लीन बोल्ड होना आदि ऐसे अनेक प्रयोग कक्षा में कराए जा सकते हैं जिसमें बच्चे ढूँढ़–ढूँढ़कर इन शब्दों का प्रयोग आपस की बातचीत में कर सकते हैं। हमारा उद्देश्य भाषा की कक्षा में रोचकता और सरसता बनाये रखने का है तो खेलकूद से रोचक बालकों के लिए और क्या हो सकता है?

हमारे पहनने के कपड़े–लत्ते से संबंधित भी अनेक शब्द, मुहावरे हमारी हिन्दी भाषा में सम्मिलित हैं। जैसे–आस्तीन का साँप होना, पाँव की जूती समझना, लँगोटिया यार, टोपी उछालना, आँचल पसारना, यहाँ तक कि धागा, सुई, दर्जी और मशीन से भी अनेक शब्द मिल जाते हैं– सुई की नोक के बराबर होना। इन सारे शब्दों के बिना हमारी अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। दैनिक पहनावे ने भी हमारी भाषा की कक्षा को समृद्ध किया है। खान–पान संबंधी अनेक शब्द और मुहावरों, लोकोक्तियों का भी, हमारे यहाँ खूब प्रचलन है–टेढ़ी खीर होना, दाल–रोटी का प्रबंध, बासी कढ़ी में उबाल, नमक–मिर्च लगाना, नाकों चने चबाना आदि मुहावरों की तरह लोकोक्तियों भी खूब प्रचलित हैं जैसे–गुड़ खाए गुलगुलों से परहेज करना, ऊँची दुकान फीका पकवान, गुड़ न दे गुड़ सी बात तो करे आदि से भी हमारी हिन्दी भाषा खूब फली–फूली है। हमारे खान–पान का भी हमारी बोली जाने वाली भाषा पर प्रभाव पड़ता है। इसी तरह हमारे वाहन, हमारे रीति–रिवाज, हमारी अर्थव्यवस्था आदि सभी से संबंधित अनेक शब्द और मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रचलन हमारी व्यवहार की जाने वाली भाषा में होता है। हमारी हिन्दी भाषा की कक्षा में आने वाले विभिन्न संस्कृतियों के बच्चों के साथ मिलकर हम उनके अपने व्यवहार किए जाने वाले शब्दों से ही उनकी भाषायी समझ और ज्ञान का विकास कर सकते हैं। कहानी, नाटक, संस्मरण हो चाहे कविता पाठ हो। इन सबके दौरान दैनिक बोलचाल के शब्दों से उस सामान्य कक्षा को खास और रोचक कक्षा में बदला जा सकता है।

स्वतंत्रता के पूर्व के लोगों का आमतौर पर अन्य राज्यों में आना–जाना कम ही होता था। वे किसी दूसरे राज्य की भाषा, संस्कृति, परंपरा की जानकारी भी नहीं रखते थे, लेकिन बावजूद इसके उनमें राष्ट्रप्रेम का भाव रहता था। मातृभाषा में मन के भाव अधिक अच्छे से पल्लवित होते हैं।

भाषायी खेल

हम सभी जानते हैं कि भाषा हमारी अभिव्यक्ति व चिंतन का एवं संचार का माध्यम होती है। अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाने के लिए हम किसी खास भाषा का उपयोग बोलकर या लिखकर करते हैं। भाषा के चार आयाम हैं–सुनना, बोलना एवं पढ़ना व लिखना। इन चारों में हमारी समझ का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। बिना समझ के सुनना, बोलना, *पढ़ना एवं लिखना हमारे लिए व्यर्थ की क्रिया हो जाती है।* हम इन चारों आयामों से कुछ खेल विकसित कर बच्चों की भाषायी समझ में वृद्धि कर सकते हैं। साथ–ही–साथ अन्य विषयों की अवधारणाओं को भी समझा सकते हैं। भाषायी खेल की चर्चा करते समय यदि हम गिजुभाई की 'दिवास्वप्न' और तेत्सुको कुरोयानागी की 'तोतो–चान' की बात न करें तो हमारी बात अधूरी–सी लगती है। इन दोनों पुस्तकों को हम शैक्षणिक प्रयोगों का रोचक दस्तावेज कह सकते हैं। यहाँ इन दोनों पुस्तकों का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इनमें वस्तु ज्ञान से आत्मज्ञान को, जीवन मूल्यों को, जीवन जीने से उत्तरदायित्व निर्वाह की भावना को विकसित किया गया है। स्वास्थ्य, विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास, भाषा का ज्ञान आदि सभी कुछ की समझ गिजुभाई और तोत्तो–चान के गुरु बड़ी आसानी से बच्चों में विकसित कर पाते हैं। हमारे शिक्षक साथी यदि अपनी–अपनी दक्षतानुसार कुछ खेल बनाकर भाषा की कक्षा में उपयोग करते हैं तो निश्चय ही इससे हमारे बच्चों की भाषायी समझ में वृद्धि होगी। हम सप्ताह में एक दिन कभी भी अपनी सुविधानुसार ये खेल करवा सकते हैं।

कुछ खेल इस प्रकार के हो सकते हैं –

1. बच्चों से यह प्रश्न किया जाए कि यदि हमारे पास अपनी भाषा/बोली नहीं होती तो हम आपस में कैसे बातचीत करते। उन्हें लिखकर या किसी अन्य तरीके से इस प्रश्न का हल ढूँढने को कहें। जब बच्चे इस पर चिंतन करेंगे तो उन्हें बड़ा मजा आएगा, हो सकता है वे आपस में संकेतों में बात करना शुरु कर दें। इनसे उनका दिमाग सक्रिय होगा। हाथ–पैरों का, आँखों का व्यायाम भी होगा क्योंकि वे जब संकेतात्मक भाषा का उपयोग करेंगे तो शरीर के विभिन्न अंगों का संचालन भी करेंगे। हो सकता है वे कोई नए तरीके ढूँढ निकालें।

भाषा का लिप्यंकन क्यों और कैसे?

भाषा जब तक वर्तमान व्यवहार में है, तब तक उसे लिपिबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। किन्तु जीवन केवल वर्तमान तक ही सीमित नहीं है और न ही कोई ज्ञान वर्तमान में ही पूर्ण है। आज जो भी विचार हमारे सामने हैं, उन विचारों और तथ्यों की बाद में भी आवश्यकता पड़ेगी और उन दूसरों को भी इनकी आवश्यकता पड़ेगी जो अभी वर्तमान में सामने उपस्थित नहीं हैं।

प्रत्यक्ष में भाषा केवल दो ही प्रकार की होती है। एक तो सांकेतिक भाषा होती है, जिसके लिए किसी प्रकार की ध्वनि की आवश्यकता नहीं। जैसे गूँगे बहरे या मौनव्रत वाले इशारों में बातें करते हैं। दूसरी होती है बोलकर प्रयुक्त की जाने वाली भाषा। अब प्रश्न यह उठता है कि इशारे में कही गई बात या बोलकर कही गई बात को उन लोगों तक कैसे पहँचाया जाए, जो वर्तमान में अभी सुनने के लिए यहाँ पर उपस्थित नहीं हैं। इसे ऐसे समझें कि हम आज के अपने विचारों को आने वाली पीढ़ियों के लिए संरक्षित कर रखना चाहते हैं, तो ऐसा क्या करें, कि आज की ध्वनिगत भाषा बाद की पीढ़ी तक पहुँच जाए। यदि आप ऐसा सोच रहे होंगे कि टेप रिकार्डर में आवाज को टेप कर दिया जाए; यह तो आधुनिक तकनीक का कमाल है, जो अभी संभव है, किन्तु पहले ये साधन उपलब्ध नहीं थे। दूर क्यों जाते हैं, आज से तीन दशक पहले हमने कभी सोचा नहीं था कि दुनियाँ के किसी भी कोने में होने वाले मैच को हम अपने घरों में बैठकर प्रत्यक्ष देख सकेंगे। यह अभी संभव हुआ है, पहले संभव नहीं था। प्रारंभिक काल में जब अन्य कोई साधन नहीं थे, उस समय यह समस्या सामने आई कि भाषा को अर्थात् तत्कालीन विचारों, तथ्यों, ज्ञान को आगे की पीढ़ी तक कैसे पहुँचाया जाए ? उसका एक सरल साधन खोजा गया, जिसे हम लिपि कहते हैं। विभिन्न भाषाओं के विद्वानों ने अपनी–अपनी भाषा के लिए लिपियाँ तैयार कीं।

वास्तव में लिपि क्या है? भाषायी ध्वनियों को एक निश्चित आकृति द्वारा व्यक्त करना ही तो लिपि है। यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि भाषा और लिपि दोनों एकदम अलग–अलग तथ्य हैं। अंग्रेजी की अपनी कोई लिपि नहीं है, वह रोमन लिपि में लिखी जाती है। ठीक इसी तरह संस्कृत, मराठी, हिंदी और छत्तीसगढ़ी भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। अनेक भाषाओं की अपनी स्वयं की लिपि तैयार की गई है, जिससे उस भाषा को व्यक्त किया जाता है।

भाषा–'विषय वस्तु' या 'कौशल'

हमारे मन–मस्तिष्क में हर वक्त विचार व भाव उठते रहते हैं। ये हमारी सोच को दर्शाते हैं। कई बार भिन्न–भिन्न तरह के विचार आते हैं और उन्हें हम वैसा ही अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं क्योंकि अभिव्यक्ति समय सापेक्ष की जाती है। उदाहरण के लिए मुझे अपने साथी पर गुस्सा आ रहा है, मन हो रहा है उसे काम करने से मना कर दूँ किंतु मन के किसी कोने से फिर आवाज़ आती है कि ऐसा करने से उसे दुःख होगा। फिर हम अपने क्रोध को नियंत्रित करते हुए उसे परामर्श देते हुए कहते हैं कि आप अपने कार्य को इस तरह अर्थात् दूसरी तरह से भी कर सकते हैं। इस तरह अभिव्यक्ति भाषा के कौशल के रूप में आती है जो अर्थ, समझ एवं समायोजन आदि की क्षमता प्रदान करती है। हम देखते हैं कि भाषा को केवल विषय वस्तु नहीं माना जा सकता। हम एक निबंध, कहानी या नाटक पढ़ते हैं या पढ़ाते हैं तो ये उस विधा के कौशल को पाने के साधन हैं। जैसे विभिन्न विधाओं का लेखन कैसे किया जाता है, इसकी समझ होने के पश्चात् हम बच्चों से भी नाटक लिखवा सकते हैं। छोटी कक्षा में चित्र पर बातचीत करना, एक परिस्थिति देकर उनसे परिचर्चा या वाद–विवाद करवाया जा सकता है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का अभिप्राय कुछ शब्दों को दोहरा देना मात्र ही नहीं है। वरन् उन शब्दों के द्वारा सूचनाएँ देने, भावनाओं को महसूस करने और अपने अनुभवों को व्यक्त करने का कार्य करते हैं। स्वर के उतार–चढ़ाव, शब्दों का सही चयन आदि का विवेक जागृत करना ही वास्तव में भाषा को सही अर्थों में सिखाना है। इस तरह भाषा वस्तु व व्यवहार से जुड़ने का साधन है।

वर्तमान में भाषा को हम 'विषय वस्तु'' के रूप में लेकर शिक्षण करते हैं। इसके यांत्रिक स्वरूप को सिखाते हैं। जैसे (1) लिपि का ज्ञान (2) शब्दों का निर्माण, उनके अर्थ से जोड़ना, शब्दों की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति (बोलकर लिपि का ध्वनि से संबंध) वाक्य का निर्माण (सार्थक अर्थ निकालना) (3) एक भाव पर अनुच्छेद लेखन (4) संक्षेपीकरण (5) वर्णन (6) पुस्तक समीक्षा (7) कविता, कहानी लिखना (8) तुलना करना आदि।

अतः विषयवस्तु भाषायी दक्षता को पाने का एक साधन एक उदाहरण है। इस तरह भाषा केवल विषय वस्तु तक सीमित न होकर विस्तृत होती जाती है और अभिव्यक्ति के विभिन्न कौशलों के रूप में विस्तार पाती है।

अपने भाषा शिक्षक को याद करते हुए 'एक पत्र'

आदरणीय गुरुजी!

सादर प्रणाम

आज आपकी विदाई के अवसर पर आपकी याद आ रही है। सच गुरुजी, स्कूल के जमाने में जब आप हमारे भाषा शिक्षक हुआ करते थे, क्या शान थी आपकी। क्या आप और क्या आपकी बेंत! ग़ज़ब का कॉम्बिनेशन था। याद आते हैं वे क्षण जब आप अपनी नोट–बुक में लिखे पृष्ठों को पूरा का पूरा ब्लैकबोर्ड पर उतार कर हमें सप्रसंग अर्थ लिखवाया करते थे। सच, कितना अच्छा लगता था जब हमें अपना दिमाग़ लगाने की ज़रुरत ही ही नहीं पड़ती थी, पर कम्बख़्त बुरा हो याददाश्त का, अब कुछ भी याद न रहा। आज भी किसी कविता का प्रसंग खोजने में असमर्थ हो मैं बस आपको याद कर लेता हूँ। नाना प्रसंगों में लिप्त आप भला कविता का प्रसंग समझने–समझाने की परेशानी कैसे मोल लेते? आपकी नोटबुक और गाइड थीं न इस काम के लिए।

बुरा हो नए प्रशिक्षणों का जो शिक्षक की भूमिका सीमित कर रहे हैं। अब तो विद्यार्थी अपने प्रयत्नों से ही पाठ समझ लेते हैं। गुरुजी का महत्व ही नहीं समझते।

गुरुजी!

मुझे याद है जब आप अपनी नोटबुक से वर्षा ऋतु का निबंध लिखवाते थे और धमकाकर कहते थे –"पूरे छः पैराग्राफ हैं। रट लो, एक भी पैरा कम लिखा तो पीठ लाल कर दूँगा।" और आपकी बेंत के डर से वर्षा ऋतु हमारी आँखों में उतर आती थी। हम डर के मारे कई–कई बार रटते थे –"वर्षा ऋतु में मेघ आकाश में गड़गड़ाते हैं और मोर नाचता है।" 'वर्षा ऋतु में मेघ आकाश में गड़गड़ाते हैं और मोर नाचता है।" और रटते–रटते कई बार तो यह रटा जाता था "वर्षा ऋतु में मोर आकाश में गड़गड़ाते हैं और मेघ नाचता है।" यह सब आपकी बेंत की माया थी गुरुजी।

गुरुजी, विशेषता यह कि विशेषण और क्रिया रटते–रटते हम स्कूल से विदा हो गए पर क्रिया समझ में नहीं आई। 'कर्ता ने' 'कर्म को' रटते–रटते मैं कर्महीन कुछ न बन सका। गुरुजी आपकी झोलाधारी छवि विलक्षण थी। आप तो रटंत विद्या की साकार मूर्ति थे। बस शुरु हो जाते–"कर्ता ने, कर्म को, तो फिर 'संबोधन हे, अरे, अजी, अहो' पर पहुँचकर ही साँस लेते। आपकी उस अद्‌भुत छवि की आज भी याद आती है।

बालक की भाषायी क्षमता

बालक जब शाला में प्रवेश लेता है तब वह अपनी बोली/भाषा में हर प्रकार का व्यवहार करने में समर्थ होता है। वह विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करता है, उन कल्पनाओं को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने की क्षमता रखता है। बालक को विभिन्न मात्राओं, जैसेः कम–अधिक, छोटा–बड़ा, आकार, दूरी, स्थान, स्वरूप आदि की विस्तृत जानकारी होती है अर्थात् उसमें गणितीय योग्यता होती है। विभिन्न अभिव्यक्तियों के माध्यम से बालक अपने व्यक्तित्व का विकास करने को तत्पर रहता है। विभिन्न परिस्थितियों को सम्भालने की उसमें अद्‌भुत क्षमता होती है। विभिन्न संस्कृति, परिस्थिति एवं सदर्भ के अनुसार वह सम्प्रेषण करता है। उसकी भाषा में आवश्यकतानुसार शिष्टता, दीनता, अधिकार, विश्वास आदि भावों की झलक स्पष्टतया देखी जा सकती है।

भाषायी क्षमता को विकसित करने हेतु दिशा कैसे – बच्चों के साथ ऐसे वार्तालाप करें जो उनके समझने योग्य हो तथा बच्चा कही गई बातों को सुनकर उचित प्रतिक्रिया व्यक्त करे। भाषा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया अनोखी होती है। मन में जो विचार रहते हैं, उन भावों को व्यक्त करने के लिए अंतःक्रिया सुनियोजित ढंग से अभिव्यक्ति के पूर्व होने लगती है। संबंधित भाव को व्यक्त करने के लिए कौन–सा शब्द उचित है, उन शब्दों की ध्वनियाँ कैसी हैं, उन ध्वनियों का क्रम क्या है, किस शब्द के बाद कौन–सा शब्द प्रयुक्त किया जाना है इसकी सम्पूर्ण रुपरेखा मानसिक रुप से विचारों के साथ–साथ तैयार होती रहती है और उच्चारण के साथ ही इन विचारों का प्रत्यक्षीकरण होता है। अतः भाषा सिखाने के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त उच्चारण में ध्वनियों की क्रम व्यवस्था ऐसी हो जो सही अर्थ को व्यक्त कर सके और भाव स्पष्ट हो सके। बालक में पूर्व संचित ज्ञान के रुप में स्वर, व्यंजन आदि ध्वनियों की समझ होती है। जैसे बालक विराम, बलाघात आदि का सहज प्रयोग कर लेता है। भाषा प्रयोग के दौरान बालक भाषा का प्रयोग सिर्फ जानकारी देने के लिए नहीं करता वरन् अपेक्षित ज्ञान की प्राप्ति के लिए भी करता है। दूसरों के द्वारा कही गई बातों को ध्यान से सुनता है उन शब्दों का विश्लेषण कर अपने अनुकूल सही अर्थ को ग्रहण करता है। उसके अचेतन मन में पहले से ही सार्थक–निरर्थक शब्दों का शब्द–भण्डार मौजूद होता है। उसके आधार पर सुने गए शब्द का जो अर्थ उसे उचित प्रतीत होता है उसके अनुसार वह प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। बालक को संज्ञा–सर्वनाम के सही रूपों के चयन का ज्ञान होता है। साथ ही लिंग, वचन, काल, संधि आदि से वह भलीभांति परिचित होता है। यह बात अलग है कि लिंग, वचन, काल आदि क्या हैं, उसे नहीं मालूम किंतु व्यवहार में उनका प्रयोग बखूबी कर लेता है।

मेरा अनुभव

भारत एक ऐसा देश है, जिसमें बहुत सारे राज्य है वहाँ पर अलग–अलग भाषा व बोली का प्रयोग किया जाता है, और मैं छत्तीसगढ़ में पैदा हुई तथा मेरी बोली छत्तीसगढ़ी बोली थी । बचपन में मैं छत्तीसगढ़ी बोली का प्रयोग करती थी और मुझे हिन्दी समझ में आती तो थी, पर बोल नही पाती थी ।

किन्तु बाद में मैं स्कूल गई तथा हिन्दी का प्रयोग करना धीरे धीरे सीख गई। बोलने में कुछ त्रुटियाँ हो जाती थी, और इसमें सुधार तभी हुआ जब मैंने हिन्दी साहित्य का गहन अध्ययन किया।

चूँकि हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है, अतः इसका प्रयोग हमें अनिवार्य रूप से करना चाहिए, और साथ ही हमें शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए हिन्दी के व्याकरण का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है । तभी हम हिन्दी का प्रयोग शुद्ध रूप से कर सकते हैं।

— कु. ममता ध्रुव

भाषा अभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का मानव निर्मित सफल साधन है । यह पैतृक सम्पति न होकर अर्जित सम्पत्ति है, जिसे बालक अनुकरण एवं प्रयास द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है। बालक का अपने जन्म से जिस व्यक्ति के साथ प्रथम घनिष्ठ संपर्क होता है वह उसकी माँ है। अपनी माता से अनुकरण के द्वारा वह जिस भाषा को सीखता है वह उसकी मातृभाषा है और हमारी मातृभाषा है **"हिन्दी"**। हिन्दी भाषा के माध्यम से हम जितनी स्वाभाविक आत्मोद्‌गार कर सकते हैं, अपने भावनाओं को शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं, यह ताकत किसी अन्य भाषा में नहीं है।

हिन्दी भाषा न केवल हमारी अपितु वह राष्ट्र की राजभाषा है। हिन्दी भाषा को संपर्क भाषा का दर्जा दिया जाता है। हम घर पर कोई भी भाषा बोलते हों परन्तु हम जब बाहर जाते हैं तो, दूसरे व्यक्ति से संपर्क साधने के लिए हिन्दी भाषा में ही बात करते हैं। जैसे – यदि हमें बाजार जाना है तो हम रिक्शावालों से संपर्क स्थापित करते हुए पूछते हैं कि **"भैय्या बाजार जाओगे क्या?"** या दुकान में पहुँच कर कोई सामान खरीदते हुए पूछते हैं कि **"भैय्या ये सामान कितने का है?** " इस तरह हिन्दी भाषा संपर्क भाषा है।

जब ही हम किसी दूसरे राज्य में जाते हैं, तो वहाँ की भाषा या बोली को हम नहीं समझ पाते और न ही वहाँ के लोग हमारी बोली समझ पाते हैं। इस स्थिति में हिन्दी एक ऐसा साधन बनती है, जिससे हम अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इस प्रकार से हिन्दी भाषा हमारे लिए बहुत उपयोगी है।

– माधुरी पटेल

मेरे छत्तीसगढ़ की हिन्दी भाषा

मेरा प्रदेश जंगल, नदी, तालाब, पहाडों, का प्रदेश है। दण्डकारण्य जंगल भी यहाँ पर है। अबूझमाड़ अभी भी अबूझ है। हमारी भाषा यहाँ पर घूमती है। छत्तीसगढ़ में अलग–अलग समय में अलग–अलग राजाओं का शासन रहा। यहाँ की संस्कृति भी बदलती रही इसका प्रभाव भाषा पर पडा। यहाँ की भाषा बोली में दूसरी भाषाओं के शब्द समाहित होते चले गए। बोलियों पर फर्क नही पड़ा, उन शब्दों को बोली ने स्वीकार कर लिया और अपना शब्द खजाना बढा लिया परन्तु हिन्दी जो पूरे देश में एक हैं, उसके कुछ शब्द बदल गए। अंग्रेजी शासनकाल में कुछ शब्द अनायास ही हमारे जीवन मे आ गए। अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया परन्तु स्वतंत्र भारत ने अंग्रेजियत को नही छोड़ा। छत्तीसगढ़ की हिन्दी में बहुत से अंग्रेजी शब्द साँस लेते रहे।

छत्तीसगढ़ में बहुत सी बोलियाँ हैं। हर दो किलोमीटर में बोली बदलती है। इसके अलावा गोण्डी, हल्बी, सरगुजिहा, सादरी, खल्टाही, जैसी बोलियाँ अपने क्षेत्र में दृढ़ता से जमी हुई हैं। हिन्दी इन सभी के पास घूमती रही परन्तु हिन्दी को स्वीकार करना लोगों के लिए कठिन था शुरू से स्कूलो की भाषा हिन्दी थी, आज भी है । पहाड़ी और जंगल के लोगों को अपने व्यापार के लिए खरीददारी करने के लिए हिन्दी की जरूरत महसूस हुई। हिन्दी बोली गई, हिन्दी पढ़ी गई। यह भाषा कुछ अलग लगती थी, उसके उच्चारण में बोली आभास होता था, जो कि अभी तक है। छत्तीसगढ़ में हिन्दी छत्तीसगढ़ की तरह लगती है।

शहर में हिन्दी हँस रही है तो गाँव में हिन्दी रो रही है। बहुत से अंग्रेजी शब्दों का समावेश हो चुका है।